मेवाड़ की पड़–चित्रांकन परम्परा

डॉ. अर्चना जोशी
व्याख्याता ड्राइंग एवं पेंटिंग विभाग
राजकीय महाविद्यालय राजस्थान

सारांश

प्रस्तुत लेख में राजस्थान की एक प्रमुख लोक चित्र शैली पर चित्रण के संदर्भ में बताया गया है कि यह एक ऐसी लोकतंत्र शैली है जो एक लंबें सूती कपड़े पर तैयार की जाती है जिसे छिपा जाति के लोग बनाते हैं इसमें गुर्जरों की आराध्य लोक देवताओं का छिपा जाती के लोगों द्वारा चित्रण किया जाता है और इसे गुर्जर जाति के लोगों के उत्सवों में भोपा जाति के लोगों द्वारा पढ़ कर सुनाया जाता हैं। प्रस्तुत लेख में बताया गया है की राजस्थान की इस प्रसिद्ध लोक चित्रण शैली आरंभ कैसे हुआ और यह पारंपरिक व आधुनिक रूप में कैसे बनाई जाती है लोक समुदाय में इसका क्या महत्व है।

मुख्य बिन्दु
पड चित्रण, लोक, भोपे।

लोक कला के क्षेत्र में राजस्थान भारत के समृद्ध राज्यों में से एक है। दक्षिणी राजस्थान की जिन लोक कलाओं ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की है उनमें पड़ चित्रण परम्परा का अद्वितीय स्थान है। पड़ चित्रकला एक सभाक्त चित्रण परम्परा है। 'पड़' कपड़े के पट्ट पर रंगों और कलमों से अंकित लोक देवी–देवताओं की चित्रित शौर्य गाथाएं हैं। चूंकि इन गाथाओं को पढ़ा या बांचा जाता है, अतः इस चित्र अलंकरण की शैली को 'पड़' कहा जाता है।

'पड़–चित्रण' के रचनाकार इस कला को 400 वर्ष पुरानी मानते हैं। कहा जाता है कि पड़ चित्रकारी का आरम्भ एक महिला द्वारा किया गया था। किंवदन्ती है कि बगड़ावतों के वशंज नरवरगढ़ के राजा ने अपनी पुत्री जयवन्ती की सगाई करने के लिए पुरोहितों को कई राज्यों में भेजा। पुरोहित भटकते रहे और थककर लौट आए, किन्तु पुत्री का सम्बन्ध नहीं हो सका। जयवन्ती ने पुरोहितों को अपने पास बुलवाया और 24 भाइयों का एक रेखांकन देते हुए कहा कि जहां ये लोग मिलें, उसी परिवार में मेरा सम्बन्ध करना। कहा जाता है कि यही रेखांकन 'पड़ चित्रण' का मूल आधार बना और आज तक भी पड़ चित्रण में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से कम नहीं है। यह पारम्परिक कला है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होती आई है तथा आने वाली पीढ़ियों को अपनी संस्कृति की पहचान कराती रही है।

पड़ को हम वर्तमान समय में प्रचलित कॉमिक्सों का प्राचन रूप मान सकते हैं जो अपने सभी खुले पृष्ठों के साथ चित्रांकित हैं, जिसमें चित्र से सम्बन्धित इबारत का अभाव एवं कागज के स्थान पर मात्र एक लम्बा कपड़ा प्रयुक्त किया जाता है जो तेरह से चौबीस हाथ लम्बा हो सकता है।

पड़ों में मुख्यतः पाबूजी की पड़, देवनारायण जी की पड़, रामदेव जी की पड़, रामदला जी की पड़, कृष्णदला की पड़, माताजी की पड़ आदि मुख्य पड़ें हैं जो चितेरों द्वारा पारम्परिक रूप से बनाई जाती हैं। इन पड़ों में सर्वाधिक लोकप्रिय पाबूजी और देवनारायण की पड़ें हैं। देवनारायण जी की पड़ सबसे प्राचीन मानी जाती है।

मुख्यतः गूजर, कुम्हार, बलाई आदि किसी भी दुष्कर कार्य की सफलता की आकांक्षा रखकर उसके पूरा हो जाने पर पड़ का वाचन करवाते हैं। मनौती की पूर्णाहुति के अलावा भावी अनिष्ठ की आशंका के निराकरण के लिये भी पड़ वाचन करवाया जाता है, जिसमें समाज के सभी लोग इकट्ठे होते हैं और देवताओं की इस सचित्र गाथा को समझते–सुनते हैं।

रात्रि के समय गांव की हथाई के पास बांस गाड़ कर पड़ को जमीन पर कनात की तरह टांग दिया जाता है। पड़ चित्रित पट्ट सम्पूर्ण कथा के दृश्यों से पूरी तरह पटा रहता है। चित्रित की जाने वाली कथा के दृश्य एक तारतम्य में चित्रित नहीं किये जाकर ऊपर–नीचे, दाएं–बाएं और बीच में चित्रित होते हैं। इसके अपने नियम होते हैं, जो पड़ वाचक भोपे को भलीभांति ज्ञात हैं। पड़ वाचन के समय लोहे की दीपकनुमा खड़ी चम्मच जिसे मेवाड़ की लोक भाषा में 'पळी' कहते हैं, से दीपक लटकाकर भोपण आगे–आगे, उल्टे पांव प्रकाश व्यवस्था करती चलती है और भोपा जंतर, थाली, झांझ आदि लोकवाद्यों की सहायता से उस प्रकाश में लोक देवताओं की गाथा सुनाता चलता है और साथ में एक अन्य भोपा हुंकारा भरता रहता है। मुख्यतः गूजर जाति के भोपे पड़ वाचन करते हैं परन्तु बलाई, राजपूत, गाडरी आदि जाति के भोपे भी कहीं–कहीं पर पड़ वाचन करते हैं।

पड़ वाचन भोपों की अजीविका का प्रमुख साधन होता है। भोपा लाल बगलबंडी (बगरती), धोती व लाल रंग की पगड़ी जिस पर तुर्रा व कलंगी लगी होती है, धारण करता है। दाहिने पैर में चांदी का एक कड़ा पहनने की परम्परा है। भोपण घाघरा, लूगड़ी, कचुली व हाथों में पीतल का चूड़ा पहनती है। पावों में कड़ी आंवले, नाक में नथ व सिर पर बोर बांधती है।

पड़ जब पुरानी और उपयोग योग्य नहीं रहती तो उसे अजमेर के निकट पुष्कर तीर्थ में विसर्जित कर दिया जाता है। इस अवसर पर भोपे समाज में सवामणी का आयोजन करते हैं।

पड़ को वर्णनात्मक गेय शैली में समझाने वाले दूसरे होते हैं और चित्रित करने वाले कोई और। पड़ के चितेरों का महत्व भोपों से कम नहीं है। ये चितेरे जोशी गौत्र के छीपा जाति के होते हैं। इन विशेष लोगों को प्राचीनकाल से पड़ चित्रण के लिये अनुबंधित किया जाता रहा। जोशी (एक जाति) यानी ज्योतिषी, ब्राह्मण समुदाय का एक उप समुदाय भी है। प्राचीन समय में जन्म कुण्डली व जन्मा पत्रिका को सजाने के लिये इन (छीपा जोशी) चित्रकारों को अनुबंधित किया जाता था। इनके तथा ब्राह्मण ज्योतिषियों के संयुक्त तत्वावधान में ज्योतिष का कार्य संपादित होता था। प्राचीन समय में भोपे इन परिवारों से पड़ों का चित्रण करवाकर गाय व दक्षिणादि में मूल्य चुकाया करते थे।

उस समय में पड़ निर्माण हेतु हाथ से बने रेजे का प्रयोग किया जाता था परन्तु अब पड़ का धरातल कोई भ साधारण सूती कपड़ा या लट्ठा हो सकता है। सबसे पहले इस सूती कपड़े को मांडी देकर बहुत कड़क बना लिया जाता है फिर घुटाई कर चित्रकारी हेतु समतल बनाया जाता है घुटाई करने का एक विशेष प्रकार का यंत्र होता है, जो इन चितेरों के घर के बाहरी हिस्से में लगा होता है। यह देखने में कुछ–कुछ हल और धान कूटने के मूसल की तरह होता है इसके निचले भाग में चिकना व पक्का पत्थर लगा होता है जिससे घुटाई की जाती है। घिसाई से मांडी लगा वरु एकदम इस्त्री किया–सा हो जाता है तथा इसमें चमक अ जाती है और यह वस्त्र रंग नहीं सोखता।

भले ही पड़ चित्रकार स्त्री हो या पुरुष, घुटाई का कार्य महिलाएं ही करती हैं। आधुनिक समय में जबकि सिल्क पर चित्रण किया जाने लगा है तो उसकी प्रक्रिया भी आधुनिक हो गई है। उसे मांडी से जमीन पर या बोर्ड पर चिपका दिया जाता है। चिपके हुए वख पर चित्रण किया जाता है और समाप्त होने पर जमीन से उतार लिया जाता है।

पट्ट पर चित्रण आरम्भ करने के लिये सर्वप्रथम आकृतियों की बाह्य रेखा पीले रंग से बनाली जाती है। घुले हुए रंगों को नारियल की नारेली में रखा जाता है। इन पड़ चित्राकृतियों की रंग योजना परम्परागत पड़ चित्रों में

प्रयुक्त किये जाने वाले रंगों के आधार पर ही होती है। ये रंग तीन प्रकार के होते हैं – मिट्टी के रंग (अर्थ कलर), वनस्पति रंग, रासायनिक रंग।

जयपुर की पड़ चित्रकर्ती पार्वती देवी के अनुसार उपरोक्त रंगों में से अधिकांशतः मिट्टी के रंगों का ही प्रयोग किया जाता है, जिन्हें घिस कर पानी व सरेसी मिलाकर तैयार किया जाता है। शाहपुरा की प्रेम देवी के अनुसार इनमें टाई के समय नीला थोथा भी मिला दिया जाता है जिससे गों में चमक आती है तथा कीटादि से भी इसे सुरक्षा मिलती है। रंगों की घुटाई में चितेरा परिवार की महिलाओं का विशेष श्रम व योगदान रहता है। पड़ की भांति रंगों को भी विशेष क्रम में लगाया जाता है। सबसे पहले केसरिया रंग को सम्पूर्ण पड़ में यथास्थान लगा दिया जाता है। हरा, गेरूआ, लाल और नीला क्रमशः लगाने के बाद जब किसी रंग को प्रयुक्त करने हेतु कोई स्थान नहीं बचता तब काले रंग की बाह्य रेखा से आकारों को बद्धकर सुन्दर स्वरूप दिया जाता है।

रंगों के भी अपने निर्धारित स्थान होते हैं। जैसे लाल रंग नायक की पोशाक हेतु प्रयुक्त होता है, खलनायक की पोशाक का रंग हरा होता है। खम्भे, खजूर, फर्श आदि गेरूआ रंग से बनाए जाते हैं। पड़ चित्रण में चटख रंगतें अधिक प्रयुक्त की जाती हैं और मूल रंगतों को ही प्रधानता दी जाती है, जो राजस्थान के लोक परिवेश के बहुत निकट हैं। बड़े आकार की पड़ें बनाते समय उन्हें एक तरफ से गोल कर दिया जाता है तथा जैसे–जैसे चित्रण आगे बढ़ता है, दोनों तरफ को गोल करके पड़ के बीच में चित्रण करते चलते हैं।

रंगों की तरह पड़ में पात्र का स्थान भी निर्धारित होता है तथा घटनाओं को किस स्थान पर चित्रित करना है, इसकी निश्चित जगह होती है। यह क्रम हर पड़ में समान रूप से देखा जा सकता है। इसीलिए पड़ वाचन करते समय भोपा इंगित करने वाली छड़ी का कभी–कभी पड़ के ऊपरी भाग पर तो कभी–कभी बीच में और कभी निचले किनारे पर चित्रित दृश्य की ओर घुमाता रहता है।

पड़ चित्राकृतियों के चेहरों के अधिकांश भाग विशाल व खुली हुई आंखों से मंडित होते हैं। नाक छोटी व गोल बनाई जाती है। होठ आकार व गोलाई में नाक से थोड़े ही छोटे होते हैं। ठुड्डियां सामान्यतः गोल व मोटी हुआ करती हैं। पशु व समस्त प्राणी हृष्ट–पुष्ट चित्रित किये जाते हैं। आकृतियां नाटकीय सी लगती हैं।

वर्तमान में पड़ की मान्यता

पड़ की मान्यता व स्वरूप में समय के साथ–साथ परिवर्तन आता गय्य है। अब भोपे और गूजरों के व्यवसाय तथा मनोरंजन के साधनों को चलचित्रों व शहरों में मिलने वाली जीविका की लालसा ने बदल दिया है। पड़ का स्वरूप भी अब उतना विशाल नहीं रहा जितना कि इसका वास्तविक स्वरूप हुआ करता था। लुप्त होती इस परम्परा को बचाने के लिए सरकार प्रयास करती रही है। अब पड़ें अपने परिवर्तित रूप में एम्पोरियमों में पर्यटकों हेतु बिक्री के लिये आधुनिक बाजारों में टंकी हुई देखी जा सकती हैं। जनसाधारण द्वारा इस कला का उपयोग सजावट हेतु ड्राइंग रूम, होटलों, स्वागत कक्षों एवं वाचनालयों आदि में बढ़ चला है। इसी प्रकार नवीन समाज में प्रचलन के कारण इस चित्रकारी का फैशन बढ़ा और अब पड़ छोटे–छोटे पैनलों में बनना आरम्भ हो गयी।

धीरे–धीरे पड़ चित्रांकन के पारम्परिक विषयों के साथ–साथ अन्य विषय जैसे आखेट व दरबार दृश्य, गाय– घोड़ों व हाथियों के झुण्ड, बारात के दृश्य आदि भी पड़ों के विषय–वस्तु बनने लगे हैं। पाबू जी एवं देवनारायण जी की गाथा की जानकारी न होने से जनसाधारण के लिये यह ग्राह्य नहीं हो पाती थी अतः अब ये पड़ चित्राकृतियां सुप्रसिद्ध कथाओं पर बनने लगी हैं जैसे रामायण, महाभारत, कृष्णलीला, पृथ्वीराज चौहान, हाड़ी रानी, दशावतार। श्रीमती पार्वती देवी जोशी ने डॉ. हेडगेवार पर एक सीरीज की रचना की तो श्रीमती प्रेम देवी जोशी ने शाहपुरा की गणगौर की सवारी को अपनी पड़ चित्रण विधा में नवीन विषय–वस्तु बनाया। इनके द्वारा कुछ विशेष धर्मों के महापुरुषों पर आधारित पैनल भी पड़ शैली में चित्रित किये गये हैं।

वर्तमान में मांग के अनुसार पड़ें विभिन्न आकारों व कीमतों की बनने लगी हैं। पारिश्रमिक की भिन्नता के आधार पर पड़ चित्रण कौशल में अन्तर देखा जा सकता है। नये प्रयोगों से एक बात और सामने आती है कि नवीन विषयों को पड़ शैली में संयोजित करना हर लोक कलाकार के बस की बात नहीं। इन्हें चित्रांकित करने में व्यक्तिगत रुचि व श्रेष्ठ संयोजन की कला में निपुण होना आवश्यक है।

शाहपुरा का जोशी परिवार ही अब तक पारम्परिक तौर से पड़ चित्रण करता आया है। भीलवाड़ा के श्रीलाल है, जोशी ने इस चित्रण परम्परा को आधुनिक व्यावसायिक मोड़ दिया और कई पुरस्कार अर्जित किए। उन्होंने विदेश यात्राएं भी कीं और अपनी कला से लोगों को परिचित कराया। समकालीन चित्रकारी पर भी पारंपरिक पड़ संयोजक व रंग योजना का प्रभाव देखा जा सकता है। रामेश्वर सिंह के चित्र पड़ की पारम्परिक व आधुनिक शैली का अच्छा समन्वय प्रस्तुत करते हैं। पड़ चित्रण में बहुतेरी विशेषताएं प्रच्छन्न हैं। इसके रंग व संयोजन इतने लुभावने होते हैं कि वर्तमान कलाकार अब भी इनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

यह पड़ चित्रण कला का अपना प्रभाव है कि इसके वैभव ने देश–विदेश के कलाविदों का ध्यान आकृष्ट किया और पड़ के विषयों पर चर्चाएं आरम्भ हुईं। भारत उत्सवों में इस कला के जोशी चितेरों ने उत्साह से भाग लिया और अपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त किया। म्यूजियम ऑफ मार्डन आर्ट गैलरी ऑफ ऑक्सफोर्ड ने भी एक सचित्र केटलॉग 'मिथ एण्ड रियलिटी' में इस चित्रण को उभारा है। अमेरिकी विश्वविद्यालय के छात्रों ने इस पर शोध कार्य किया और देश–विदेश के वीडियो केमरामैनों ने समय–समय पर भीलवाड़ा–शाहपुरा में प्रवास कर इस विधा के सिलसिलेवार चित्र लिए हैं। भारतीय पर्यटन विभाग व लघु उद्योग केन्द्र ने इस विधा से जुड़े कलाकारों को पुरस्कृत किया है। भारत के विभिन्न शहरों में लगने वाले लोक कला मेलों में पड़ चित्रण ने विशिष्ट स्थान पाया है। जयपुर (आमेर) में रहने वाली श्रीमती पार्वती जोशी ने इस क्षेत्र में लघु उद्योग निगम से राज्य स्तरीय एवं जिला स्तरीय पुरस्कार प्राप्त किये।

पड़ कला अब तक मेवाड़ की कुछ जातियों एवं क्षेत्रों तक ही सीमित रही, परिवर्तित स्वरूप में जन–मानस में बैठने लगी है। यह न केवल राजस्थान बल्कि देश की सीमाओं को पार करती हुई विभिन्न देशों तक पहुंच रही है। अतः यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि पड़ कला का भविष्य गौरवमयी संभावनाओं से भरा हुआ है।

सन्दर्भ

1. डॉ कृष्ण बिहारी सरल राजस्थान लोक गाथा कोष साहित्य संस्थान जोधपुर 1996 पृष्ठ संख्या 15
2. देवीलाल सांभर लोक कला की पृष्ठभूमि आकृति 1967 जयपुर पृष्ठ संख्या 1
3. मणि मधुकर, प्रमुख से बोलेगी गाठां सब खोलेगी, मुंबई 1973 पृष्ठ संख्या 5
4. महेंद्र भानावत : – राम दला की पड, – देवनारायण रो भारत, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर 1972 पृष्ठ संख्या 20 – संस्कृति के रंग , भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर 1979 पृष्ठ संख्या 30
5. प्रेम सुमन जैन ,पट्ट चित्रावली की लोक परंपराः लोक सांस्कृतिक रूप और दर्शन,बीकानेर ,1970 पृष्ठ संख्या 19